International Journal of Scientific Research in Science and Technology
© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 11 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

आदिवासी एवं किसान आंदोलन : एक अध्ययन

डॉ0 रेखा कुमारी
एम.ए., पीएच.डी. (इतिहास)
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

स्थितियों के प्रति सुमित सरकार का दृष्टिकोण वस्तुपरक एवं वैज्ञानिक है। वस्तुतः गाँधीजी के स्वराज्य की सामाजिक एवं आर्थिक अवधारणाएँ एक ऐसा आदर्श उपस्थापित करती थीं कि इसके लिए कठोर त्याग एवं तपस्या की आवश्यकता थी और एक लम्बे समय की मॉग करती थी जबकि लोग न तो उतना त्याग दीखा रहे थे और न समय देना चाहते थे। यही कारण था कि गाँधी जी की अहिंसा एवं सत्याग्रह की अपील के बावजूद इन्हीं वर्षों में अनेक हिंसक आंदोलन हुए। असहयोग आंदोलन से अनजाने ही अनेक क्षेत्रों में निम्न वर्गों का जो स्वतः स्फूर्त विद्रोह उठ खड़ा हुआ था, वह बारदोली आंदोलन वापस ले लेने के साथ ही शांत नहीं हुआ। उदाहरण के लिए, बाराबंकी का 'एका' आंदोलन मार्च 1922 तक भी संयुक्त प्रांत के अधिकारियों के लिए परेशानी खड़ी कर रहा था, और बंगाल के टिपरा एवं चटगाँव जिलों में जुलाई तक शांति–व्यवस्था पूर्णतः स्थापित नहीं की जा सकी थी। किन्तु, जनसंघर्ष के जारी रहने का सबसे महत्वपूर्ण प्रमाण मिला गोदावरी के उत्तर में स्थित रंपा क्षेत्र से, जहाँ अगस्त 1922 और मई 1924 के बीच अल्लूरी सीताराम राजू ने वस्तुतः छापामार युद्ध छेड़ रखा था। सीताराम राजू सचमुच एक विलक्षण व्यक्ति थे जो आंध्र में तो लोकनायक बन गए, किन्तु अन्यत्र लगभग अज्ञात ही रहे। जिन बातों को लेकर आंदोलन छेड़ा गया था और जो अगस्त 1924 की एक सरकारी रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से दर्ज है, मूलतः वही पुराने मुद्दे थे–साहूकारों द्वारा शोषण, झूम खेती, और जमाने से चले आ रहे चराई संबंधी अधिकारों पर रोक लगानेवाले वन विभाग के कानून। आंदोलन का तत्कालिक कारण गुडेम का बास्टियन नामक अलोकप्रिय तहसीलदार था। उसने आदिवासियों से बिना मजदूरी दिए जंगल में सड़क–निर्माण का कार्य करवाने का प्रयास किया। किन्तु, इस बार आंदोलन का नेता कोई स्थानीय सरदार न होकर एक परदेशी था

जो 1915 में कहीं से आकर आदिवासियों के बीच बस गया था। वह ज्योतिष जानने एवं रोगों को दूर करने की शक्ति रखने का दावा करता था। असहयोग आंदोलन से प्रेरित होकर उसने ग्राम पंचायतों की स्थापना की और शराब के विरूद्ध आंदोलन चलाया। इस आंदोलन में बड़े आकर्षक ढ़ंग से उन तत्वों का मेल हुआ था जिन्हें हॉब्सबाम ने 'आदिम विद्रोह' और आधुनिक राष्ट्रवाद के तत्व कहा है। तथाकथित रूप से, राजू का दावा था कि गोलियों का उन पर कोई प्रभाव नहीं होता; विद्रोहियों की एक घोषणा में यह भी कहा गया था कि भगवान् कल्कि का अवतार होनेवाला है। फिर भी, विद्रोह के दौरान स्थानीय अधिकारियों के साथ मुलाकातों में राजू 'गाँधीजी की बड़ी प्रशंसा करते थे, यद्यपि उनका विचार था कि 'हिंसा आवश्यक है' और उन्हें इस बात का दुःख था कि वह यूरोपियनों को इस कारण नहीं मार सकते कि 'या तो भारतीय उनके साथ रहते हैं या वे भारतीयों से घिरे रहते हैं जिन्हें वे मारना नहीं चाहते। 24 सितम्बर 1922 को डमरापल्ली पर मारे गए छापे के दौरान वास्तव में विद्रोहियों ने भारतीयों के एक अग्रिम दल को निकल जाने दिया और फिर दो अग्रेज अधिकारियों को गोली मार दी। अंग्रेजों ने भी, अनिच्छा से ही सही, राजू की छापामार रणनीति की प्रशंसा की थी जिन्होंने पुलिस थानों पर सफल धावे बोलकर अपने साथियों को सशस्त्र किया था। उनके विद्रोही दल में लगभग सौ व्यक्ति थे जो पानी की मछलियों की तरह रहते थे; उन्हें 'लगभग 2500 वर्गमील के क्षेत्र में स्थानीय पहाड़ी लोगों की सहानुभूति प्राप्त थी।' इस विद्रोह को दबाने में मद्रास सरकार को 15 लाख रूपये खर्च करने पड़े और मलाबार स्पेशल पुलिस एवं असम राइफल्स की सहायता लेनी पड़ी। 6 मई 1924 को राजू को गिरफ्तार कर लिया गया, और जल्दी ही रिपोर्ट की गई कि उन्हें 'भगाने का प्रयास करते हुए' गोली मार दी गई। यह एक अप्रिय मगर परिचित बहाना मात्र है। अंततः सितम्बर 1924 में विद्रोह को खत्म कर दिया गया।

1920 के पूरे दशक में राजस्थान सामंत–विरोधी किसान आंदोलनों का केन्द्र बना रहा। मई 1922 में मेवाड़ पुलिस ने मोतीलाल तेजावत द्वारा प्रेरित भील आंदोलन को दबाने के लिए पूरे दो गाँवों को जलाकर राख कर दिया था। 1927 से बिजौलिया फिर अगली पाँत में आ गया था। वहाँ के किसान विजयसिंह पथिक,

मणिकलाल वर्मा और हरिभाऊ उपाध्याय के नेतृत्व में नए महसूलों एवं बेगार के विरूद्ध सत्याग्रह के तरीके अपना रहे थे। अलवर रियासत में स्थित नीमूचना में मई 1925 में भू–राजस्व में 50 प्रतिशत वृद्धि का विरोध कर रहे किसानों का वस्तुतः नरसंहार किया गया– राज्य की पुलिस ने 156 किसानों को मार डाला और 600 को घायल कर दिया। फिर भी कांग्रेस ने राजवाड़ों में होनेवाली किसी भी आंदोलन से औपचारिक रूप से जुड़ने से इनकार कर दिया (यह नीति 1938 में हरिपुरा में ही त्यागी गई), यद्यपि राष्ट्रीय विचारोंवाली शहरी मध्यमवर्गीय प्रज्ञा परिषदें उभरने लगी थीं। (इनमें पहली परिषद् बड़ौदा में 1917 में बनी, फिर 1921 में काठियावाड़ क्षेत्र में, और इन दोनों स्थानों का गुजरात के निकट होना महत्वपूर्ण था) स्टेट्स सब्जेक्ट्स कांफ्रेंस (जिसे बाद में 'पीपुल्स' कांफ्रेंस कहा गया) की 1923 के बाद से वार्षिक बैठकें होने लगी थीं, किन्तु इसकी गतिविधियाँ अभी मामूली ही होती थीं। मेवाड़, जैसे रजवाड़ों में किसानों का जुझारूपन निश्चय ही शहरी राष्ट्रवाद से पहले आया।

किसानों की तात्कालिक मॉग को उठाने में कांग्रेस स्पष्ट रूप से बार–बार असफल रही थी जिससे उनका मोहभंग हुआ और 1920 के दशक में उन्होंने नई विचारधाराओं की खोज आरंभ कर दी थी। 1922 में स्वामी विद्यानंद ने जमींदारी समाप्त करने की मॉग उठाई और बाबा रामचंद्र ने नवम्बर 1925 में लेनिन को 'किसानों का प्यारा नेता 'बतलाते हुए कहा कि 'रूस के अतिरिक्त, किसानों अब भी सर्वत्र दास हैं,'' कांग्रेसी चाहे स्वराजी हों या अपरिवर्तनवादी, उनके जमींदारों अथवा मँझोले जोतधारियों के साथ दृढ़ संबंध होते थे, और इस कारण वे किसानों की माँगों के प्रति प्रायः उदासीन रहते थे। किसानों की मॉगें लगानों में कमी की होती थीं, अथवा बिहार, बंगाल और संयुक्त प्रांत में बँटाईदार फसल का अधिक न्यायपूर्ण बँटावारा चाहते थे। यह स्थिति बंगाल में सर्वाधिक स्पष्ट थी और अंत में वहीं अत्यधिक विनाशकारी भी सिद्ध हुई। वहाँ 1920 के दशक में बँटाईदारी (बरगा) की प्रथा तेजी से फैल रही थी। यहाँ स्वराजियों ने बरगादारों को काश्तकारी का दर्जा दिए जाने का कड़ा विरोध किया, और उन्होंने मैमनसिंह, ढाका, पवना, खुलना और नादिया जैसे जिलों में जारी नामशूद्र एवं मुसलमान बरगादारों के अनेक आंदोलनों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं दिखाई।

संयुक्त प्रांत की कांग्रेस ने अवश्य थोड़ा किसान समर्थक रूख दिखाया और 1924 में एक संयुक्त प्रांत किसान संघ का आरंभ किया ताकि सरकार पर इस बात के लिए जोर डाला जा सके कि आगरा प्रांत के लिए जिस टेनेंसी अमेंडमेंट बिल पर चर्चा हो रही थी, उसकी जमींदार–समर्थक धाराओं में वह थोड़ी तबदीली करे। फिर भी, यह स्पष्ट कर दिया गया था कि 'संघ की नीति यह रही है कि जमींदारों के विरूद्ध एक भी शब्द कहकर उन्हें नाराज न किया जाए, अपितु सरकार की ही आलोचना की जाए जिसके हाथों में जमींदार अनजाने में खेल रहे है'।

किसानों की एक शिकायत के संबंध में कांग्रेस का आमतौर पर स्पष्ट रवैया होता था और वह थी रैयतवारी क्षेत्रों में मालगुजारी की वृद्धि। इस वृद्धि। इस वृद्धि का विरोध कुछ सफलता के साथ 1923–24 में तंजौर में हुआ था, जहाँ समृद्ध मिरासदार रहते थे। तटीय आंध्र प्रदेश में एन.जी. रंगा ने 1923 में किसानों के ऊपरी वर्ग के बीच कार्य और उसी वर्ष गुंटुर में पहली रैयत एसोसिएशन की स्थापना की। 1927 में कृष्णा–गोदावरी मुहाना क्षेत्र में अंग्रेज सरकार द्वारा राजस्व में पौने उन्नीस प्रतिशत की वृद्धि करने के प्रयत्न के परिणामस्वरूप तटीय आंध्र प्रदेश में एक सशक्त किसान आंदोलन उठ खड़ा हुआ। इस आंदोलन को पूर्वी गोदावरी क्षेत्र में वेन्नेती सत्यनारायण एवं पश्चिमी गोदावरी को पूर्वी गोदावरी क्षेत्र में वेन्नेती सत्यनारायण एवं पश्चिमी गोदावरी क्षेत्र में दंडु नारायणाराजू जैसे स्थानीय कांग्रेसी नेताओं के साथ ही टी0 प्रकाशम् और कोंडा वेंकटपय्या जैसे प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेताओं ने भी चलाया था। 1928 के बाद से वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में बारदोली ही ऐसे समस्त आंदोलनों की मुख्य प्रेरणा रहा।

गाँधी जी की सामाजिक समरसता के प्रयत्नों के बावजूद भारतीय समाज के विभिन्न अंतर्विरोध प्रायः जाति संगठनों एवं आंदोलनों के माध्यम से प्रकट होते रहे जो विभाजक भी हो सकते थे और मूलतः रूढ़िवादी होते थे, किन्तु कभी–कभी उनमें पर्याप्त जुझारूपन की संभावनाएँ भी होती थी। मद्रास की गैर–ब्राह्मण जस्टिस पार्टी खुलेआम राजभक्त थी और उसने अंग्रेजों की दृष्टि से उस प्रांत में द्विशासन को सफल बनाया। अधिकारियों और चुने हुए मंत्रियों के बीच सौहार्दपूर्ण सहयोग का अन्य एकमात्र उदाहरण पंजाब में मिलता है जहाँ फैजी हुसैन की युनियनिस्ट

पार्टी मुख्यतः शहरी राष्ट्रवाद के खिलाफ एक सशक्त 'एग्रीकल्चरिस्ट' (अर्थात् जमींदारों और समृद्ध किसानों की) लॉबी बनाने में सफल रही थी जिसमें जाट और मुसलमान भी सम्मिलित थे। महाराष्ट्र में भास्करराव जाधव की गैर–ब्राह्मण पार्टी ने भी ऐसी भूमिका निभाने का प्रयास किया। यह पार्टी कांग्रेस की कट्टर शत्रु थी और इसका आरोप था कि कांग्रेस ब्राह्मणों की महत्वाकांक्षाओं को ढँकने का मुखौटा है। यह एक ऐसा आरोप था जिसे पुष्ट करने में तिलकवादी विचारधारा के कुछेक पक्ष सहायक हुए।

फिर भी, जहाँ व्यवहार में जस्टिस पार्टी और जाधव जैसे गैर–ब्राह्मण नेता की रूचि मुख्यतया अभिजन इतर लोगों के लिए नौकरियों में संरक्षण एवं उच्च वर्गों के अनुकरण से अपने संस्कृतीकरण तक ही सीमित रही, वहीं 1920 के दशक में अन्य, कहीं अधिक जुझारू और सच्चे अर्थ में जन–आंदोलन भी उभर रहे थे।

मई 1925 में बिहार सरकार की एक रिपोर्ट में कहा गया था कि पटना, मुंगेर, दरभंगा और मुजफ्फरपुर के ग्वाले अथवा यादव ''अपनी जाति के सामाजिक दर्जे के उत्थान के लिए आंदोलन कर रहे है, और उसी आधार पर यज्ञोपवित पहनकर अब वे उन निकृष्ट अथवा अन्य सेवा–कार्यों से इनकार करना चाहते हैं जो वे मालिकों के लिए करते आए हैं। यहाँ यह कहा जा सकता है कि स्वामी सहजानंद सरस्वती ने भी, जो बिहार ही नहीं समस्त भारत के प्रमुख किसान नेता हुए, पटना जिले में बिहटा स्थित एक आश्रम से भूमिहार ब्राह्मण सभा के संस्थापक के रूप में अपना कार्य आरंभ किया था।

संदर्भ सूची :

1. अमिय बागची, पृ. 95.
2. बागची, पृ.238.
3. वहीं, पृ. 275–77.
4. प्रताप, 23 नवंबर, 1925, मजिजद सिद्दीकी की एग्रेरियन अनरेस्ट इन नॉर्थ इंडिया, पृ. 195 पर उधृत उसी में, पृ. 279.
5. वही

6. वही, पृ. 278.
7. वही.
8. वही, पृ. 280.
9. बिहार एण्ड उड़ीसा, 1925.
10. विस्तृत अध्ययन के लिए देखें, स्वामी सहजानंद : मेरा जीवन संघर्ष, 2000.